ज्ञानमूला शान्ति

डॉ. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर
एम. जे. एफ. आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चोमू

राष्ट्रपति-सम्मानित प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड
पूर्व कुलपति
डॉ. एस. राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर

प्रत्येक वर्ष 21 सितम्बर को सम्पूर्ण विश्व में एक साथ विश्व शान्ति दिवस मनाया जाता है जो इस बात का द्योतक है कि सम्पूर्ण विश्व शान्ति की आकाङ्क्षा तो करता है पर मोहमूलक भ्रान्तियों के कारण विभिन्न देशों के शासक स्थायी शान्ति को नहीं रहने देते।

यद्यपि इसमें कहीं पर भी अकेले किसी शासक या अकेले किसी देश का हेतुत्व नहीं है अपितु परस्पर विभिन्न देशों में समन्वय का अभाव होने के साथ-साथ असन्तुष्टि के भाव एवं अन्य विभिन्न ऐसे हेतु हैं जिन के कारण नहीं चाहते हुए भी अनेक दोषों को अशान्तिमूलक हिंसापरक युद्ध करने पड़ते हैं। इन देशों को परस्पर कठोर एवं कटु वचन भी प्रयुक्त करने पड़ते हैं जिनसे स्वतः ही मानसिक अशान्ति की अभिव्यक्ति होती है, जिसका प्रभाव देश के विकास पर तो पड़ता ही है देशवासियों को भी मानसिक अशान्ति आक्रान्त करती है। उनमें रजः प्रधान और तमःप्रधान भावों की अभिवृद्धि होती है जो कि विनाश के प्रमुख हेतु हैं|

संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रयासों से सम्पूर्ण विश्व में एक दिन शान्ति रखने का प्रस्ताव पारित हुआ, इसे सन् 1981 से प्रारम्भ किया गया। प्रारम्भ में यह दिन शान्ति के मूलभूत सिद्धान्तों को तथा आदर्शों को और अधिक दृढ़ करने तथा शान्ति-प्रक्रिया को अभिवृद्ध करने के लिए मनाए जाने का निर्णय हुआ।

कहीं पर भी किसी भी उत्सव को केवल एक दिन मना लेने से उसके सिद्धान्त पूर्णरूपेण कार्यरूप में परिणत नहीं होते लेकिन उसके प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है, प्रेरणा प्राप्त होती है और अधिक से अधिक लोग उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए जुड़ते हुए चले जाते हैं। अतः पूरे वर्ष में एक दिन भी शान्ति के जो प्रयास किए जाते हैं उनके दूरगामी परिणाम निश्चित रूप से प्राप्त होते ही हैं।

प्रारम्भ में यह दिवस केवल शान्ति के प्रयास करने के रूप में मनाया जाने का प्रस्ताव था। इसके दो दशक बाद सन् 2001 में सर्वसम्मति से यह निर्णय भी लिया गया कि इस दिन पूर्ण रूपेण अहिंसा को कार्य रूप में परिणत किया जाए उसकी अभिवृद्धि के प्रयास किये जायें तथा कहीं पर भी युद्ध हो रहा हो तो उस दिन इसे पूर्ण संघर्ष विराम के रूप में मनाया जाना चाहिए। इस इस निर्णय के बाद निरन्तर यह दिन प्रतिवर्ष अहिंसा को बढ़ावा देने एवं अनिवार्य रूप से संघर्ष विराम करने के रूप में मनाया जाने लगा जो कि सम्पूर्ण विश्व में शान्ति के प्रयासों के लिए एक उत्कृष्ट प्रयास है|

विश्व शान्ति दिवस एक साङ्केतिक भावाभिव्यक्ति का दिन है, इस दिन सम्पूर्ण विश्व में एक दिन का युद्ध विराम रहता है। निश्चित रूप से यह युद्धविराम सभी को क्षणिक शान्ति प्रदान करता ही है साथ ही इससे यह सन्देश भी प्राप्त होता है कि जीवन में शान्ति से बढ़कर कुछ भी नहीं है। इस शान्ति का मूल अहिंसा है और यह अहिंसा प्रकारान्तर से प्राणदान ही है। इसके लिए भगवान् आत्रेय कहते हैं कि-

छित्त्वा वैवस्वतान् पाशान् जीवितं यः प्रयच्छति।।
धर्मार्थदाता सदृशस्तस्य नेहोपलभ्यते।
न हि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते।।
परो भूतदया धर्म इति मत्वा चिकित्सया।
वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते।। (चरक.चिकित्सा. 1/4/ 60-62)

इससे जिसे प्राणदान मिला है वह तो सुख और शान्ति की प्राप्ति करता ही है लेकिन जो प्राणदान करता है वह यदि गम्भीरता से चिन्तन मनन करे तो उसे भी सुख और शान्ति प्राप्त होती है तथा उसे एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। यद्यपि यह सब कुछ रोग से मुक्ति दिलवा कर पूर्णरूप से आरोग्य की प्राप्ति करवाने वाले चिकित्सक के लिए कहा गया है जो जीवनदान ही करता है तथा उसे श्रेष्ठ भी माना है। यदि इन भावों को अहिंसा के साथ संयुक्त कर दें तो भी परिणाम वही जीवनदान ही है अतः संसार में जीवनदान से बढ़कर कुछ भी नहीं है । भारतवर्ष में प्राचीन काल से अध्यात्म का प्राधान्य रहा है, आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के प्रभाव से राजसिक और तामसिक भावों को धर्षित कर (दबाकर) या तिरोहित कर सात्त्विक भावों को अभिवृद्ध करने की प्रक्रिया की जाती है| यद्यपि इसमें प्राथमिक रूप से सात्त्विक भाव अस्थाई रूप से अस्तित्व में आते हैं पर निरन्तर अभ्यास यदि किया जाता है तो इन सात्त्विक भावों में स्थायित्व प्राप्ति की ओर व्यक्ति बढ़ता ही है।

मानसिक दोष (रजोदोष एवं तमोदोष) की निवृत्ति या उल्लङ्घन करने के बाद जब सात्त्विक भावों का उद्रेक

(वृद्धि, आधिक्य) होता है तभी धर्मशास्त्र के अनुरूप मोक्ष की प्राप्ति के उपायों की ओर व्यक्ति अग्रेसरित होता है। लाखों साधकों में से कुछ साधक ही इनके माध्यम से धर्मद्वारों में (धर्मशास्त्रों में) निर्दिष्ट मोक्ष की प्राप्ति करते भी हैं, मनोदोषयुक्त व्यक्ति के लिए मोक्षप्राप्ति सम्भव नहीं है उसके लिए मोक्ष के उपदेश भी नहीं किए जाते हैं, यथा- **न चानतिवृत्तसत्त्वदोषाणामदोषैरपुनर्भवो धर्मद्वारेषूपदिश्यते ।।** च.सू.११/२८।।

अर्थात् जिनके सत्त्वदोषों का अर्थात् मन के दोषों का अतिक्रमण नहीं हुआ है मन के दोष दूर नहीं हुए हैं ऐसे व्यक्तियों के लिए दोषरहित महर्षियों के द्वारा धर्मद्वारों में अर्थात् धर्मशास्त्रों में अपुनर्भव का अर्थात् मोक्ष का उपदेश नहीं किया जाता है।

शरीर एवं मन का पीड़न हिंसन है किसी भी उपाय से शरीर एवं मन की पीड़ा का उपशमन होना ही शान्ति है इसमें अनेक प्रकार के उपाय हैं। शरीर में विभिन्न प्रकार के आगन्तु कारणों से एवं शरीरस्थ दोषों के वैषम्य से जो रोगोत्पत्ति होती है वह शरीर को पीड़ित करती है उन रोगों का शमन करने के उपाय शान्ति के उपाय माने जाते हैं। शमन ही शान्ति है, वस्तुतः शान्ति का सीधा सम्बन्ध मन से है, मन में अशान्ति होने से क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, अभिद्रोह इत्यादि उत्पन्न होते हैं जो कि व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की विकृतिमूलक क्रियाओं को करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार की स्थितियों में किए गए कार्य सामान्यतया हिंसा की श्रेणी में आते हैं।

शान्ति का विपर्यय भाव प्रायः हिंसा को माना जाता है, अतः इन मानसिक भावों का अपवारण (बचाव) अथवा निवारण करने के उपाय ही शान्ति के उपाय हैं, जिसके लिए पारम्परिक रूप से धर्मशास्त्रों में शान्तिहोम करने का विधान है।

चरकसंहिता में शान्ति के उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं, प्रमुख रूप से शान्ति का विधान आसन्नप्रसवा के लिए कहा गया है, यह उसके मन से भय को दूर कर मन में दृढ़ता प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है। इससे न केवल प्रसूता के अपितु सूतिकागृह में प्रसव-प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाले चिकित्सक एवं परिचारक आदि के मानसिक भावों में भी सात्त्विक भावों का उद्रेक होता है। महर्षि चरक कहते हैं कि-

ततः प्रवृत्ते नवमे मासे पुण्येऽहनि प्रशस्तनक्षत्रयोगमुपगते प्रशस्ते भगवति शशिनि कल्याणे कल्याणे च करणे मैत्रे मुहूर्ते शान्तिं हुत्वा गोब्राह्मणमग्निमुदकं चादौ प्रवेश्य गोभ्यस्तृणोदकं मधुलाजांश्च प्रदाय ब्राह्मणेभ्योऽक्षतान् सुमनसो नान्दीमुखानि च फलानीष्टानि दत्त्वोदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्य पुनराचम्य स्वस्ति वाचयेत्।

ततः पुण्याहशब्देन गोब्राह्मणं समनुवर्तमाना प्रदक्षिणं प्रविशेत् सूतिकागारम्।
तत्रस्था च प्रसवकालं प्रतीक्षेत।। (च.शा. 8/35)

इसको स्पष्ट करते हुए चक्रपाणि कहते हैं कि-

शान्तिं कृत्वेति शान्तिहोमं कृत्वा। नान्दीमुखानि च फलानि नान्दीमुखश्राद्धाय हितानि फलानि; किंवा नान्दी मुरजः, तन्मुखाकृतीनि फलानि खर्जूरादीनि। पुण्याहशब्दो मङ्गलशब्दः। प्रदक्षिणं यथा भवति तथा गोब्राह्मणं समनुवर्तमाना।। (च.शा. 8/35 चक्रपाणि)

आसन्नप्रसवा के लिए बताया गया यह शान्तिहोम एक साङ्केतिक स्वरूप है। शान्तिहोम का एक निश्चित विधान है जिससे निश्चित रूप से सात्त्विक भाव उद्रिक्त होते हैं, अतः यह किसी भी स्थिति में किसी के लिए भी किए जाने पर निश्चित रूप से मन से विकृत भावों का निवारण एवं उत्कृष्ट भावों का समावेश करता है।

नवजात शिशु की रक्षा के लिए भी शान्तिकर्म का विधान है वस्तुतः वह सम्पूर्ण वातावरण की कीटादि से मुक्ति का विधान होने के साथ-साथ परिचर्या में संलग्न सभी व्यक्तियों के मानसिक भावों में भी सौम्य स्वरूप लाने का एक विधान प्रतीत होता है, यथा-

अनुपरतप्रदानमङ्गलाशीःस्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविशदमनुरक्तप्रहृष्टजनसम्पूर्णं च तद्वेश्म कार्यम्। ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित् सततमुभयकालं शान्तिं जुहुयात् स्वस्त्ययनार्थं कुमारस्य तथा सूतिकायाः। इत्येतद्रक्षाविधानमुक्तम्।। (च.शा. 8/47)

वर्तमान में भी ग्रहशान्ति, शान्तिपाठ एवं शान्तिहोम किए जाते हैं, इनसे मन को तात्कालिक रूप से शान्ति प्राप्त होती है। इसके लिए यह भी कहा जा सकता है कि इन उपायों से मन में सात्त्विक भावों का उद्रेक (उत्कर्ष) होता है, अतः व्यक्ति राजसिक और तामसिक भावों से होने वाले हिंसापरक कार्यों को नहीं करता है। इन उपायों से मन में उत्पन्न विकृत भावों की निवृत्ति होती है।

महर्षि सुश्रुत ने ऋतु की व्यापत्ति होने पर उसके बचाव के अनेक उपाय निर्दिष्ट किए हैं-

तत्र, स्थानपरित्यागशान्तिकर्मप्रायश्चित्तमङ्गलजपहोमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कारतपोनियम-दयादानदीक्षाभ्युपगमदेवताब्राह्मणगुरुपरैर्भवितव्यम्, एवं साधु भवति ।।२०।। (सु.शा.६/२०)

आचार्य द्वारा निर्दिष्ट प्रत्येक शब्द की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार दलहन कहते हैं कि-

शान्तिरिन्द्रियविजयः, अथवा वेदोक्तमन्त्रैर्यजनादिकं; प्रायश्चित्तं प्राक्तनकर्मोपशमार्थं स्मार्तवचनेन चान्द्रायणादि, अथवा "प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते| तपोनिश्चियसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्" - इति; मङ्गलं प्रशस्तौषधमणिधारणादि; जप ओङ्कारपूर्वकमृग्यजुःसामावर्तनं; होमो लक्षकोटिप्रयुतोपलक्षितः; (डल्हण)

मूल रूप से यहाँ पर स्थान का त्याग सबसे महत्त्वपूर्ण है, लेकिन यह सम्भव नहीं है, फिर भी युद्ध या जनपदोद्ध्वंश (महामारी) के समय ऐसा करना परमावश्यक होता है तथा प्रायः ऐसा किया भी जाता है।

शान्तिकर्म में प्राथमिक रूप से इन्द्रियविजयपूर्वक मन को नियन्त्रित करना है तथा उसके बाद वेदोक्त मन्त्र इत्यादि से विधिपूर्वक होम करते हुए वातावरण में शान्ति के भावों को स्थापित करना है। जाने अनजाने में यदि हिंसा हुई है तो उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

व्यक्ति को अपने किए हुए विकृत कर्म के लिए जब ग्लानि उत्पन्न होती है तब वह प्रायश्चित्त करता है। प्रायश्चित्त में जो तप, व्रत, दान एवं जप इत्यादि किए जाते हैं उनके द्वारा उस ग्लानि का निवारण करता है। इस के लिए वह जिन उपायों को करता है उनसे उसका व्याकुल मन व्यवस्थित होकर शान्ति को प्राप्त करता है। वस्तुतः युद्ध की स्थिति या अशान्ति एवं हिंसा अथवा उपद्रव होने पर भी यदि इन उपायों को किया जाए तो उनसे शान्ति स्थापित हो सकती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अहिंसापूर्वक शान्ति स्थापित करने की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में लोभ, मोह, क्रोध, काम, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि के मूल स्वरूप को जानकर व्यक्ति यदि इनकी निवृत्ति के उपाय करता है तो न केवल उसके मन को शान्ति प्राप्त होती है अपितु उसके सम्पूर्ण परिकर में शान्ति स्थापित होती है अतः यह कहना उपयुक्त है कि शान्ति ज्ञानमूला होती है और वह चिरस्थायी होती है|